ढाला, सत्य और अहिंसा का पाठ पढ़ाया। जिन्होंने हमें कुर्बानियां करना सिखाया। जिनके कारण हम आज स्वतंत्र हैं, जिनकी वजह से हम इस संविधान सभा में आये अब संविधान पास करने हम जा रहे हैं और उसको सारे देश में लागू करने जा रहे हैं। कितना दुखद है कि इसके सम्बन्ध हमने उनकी चर्चा तक नहीं की। उसके बाद जो छोटे सूबे और जिनकी आमदनी कम है उनमें लेजिसलेटिव कौंसिल नहीं रहना चाहिये। उन सूबों में जहां आमदनी कम है, मेरी समझ में नहीं आता कि वहां लेजिस्लेटिव कौन्सिल क्यों रखा गया है। बिहार हम लोगों ने विधायिका सभा में एकमत से इसे पास किया था कि वहां लेजिसलेटिव कौन्सिल न हो परन्तु वह एक मत से स्वीकृत निर्णय यहां आकर पलट गया। वहां बड़े-बड़े विद्वान और एक्सपर्टस के रखने का जो ख्याल है उस चीज़ के लिये हम लोग दूसरा प्राविजन कर सकते थे किन्तु हम लोगों ने ऐसा नहीं किया। हम लोग उन्हें निश्चित अवधि के लिये नामजद कर सकते थे जिसमें वे अपना विचार दे सकते थे और वाद-विवाद कर सकते थे। जिसमें वे अपना विचार दे सकते थे और वाद-विवाद कर सकते थे। सिर्फ उन्हें वोट देने का हक नहीं होता। हम ने डाइरेक्टिव प्रिंसिपल्स जो दिये हैं अपने संविधान में उसमें 40 से 51 तक जो धारायें हैं सब में 'endeavour to' की झड़ी लगी हुई है। ऊपर से देखने से बहुत सुन्दर मालूम होता है। शहरी है पर आत्मा नहीं। मेरी समझ में आता है कि जब हम कोई काम करते हैं या टालना चाहते हैं तो हम आधे मन से कह दिया करते हैं कि "मैं कोशिश करूंगा।" मुझे ऐसा लगता है कि यही है यहां पर "endeavour to" इसी तरह अध्यक्ष जी, शराब के सम्बन्ध में हमने जैसा, रखना चाहा था वैसा नहीं रखा। गौवध भी हमने पूरी तरह से नहीं रोका। 340 धारा में पिछड़ी जातियों के सम्बन्ध में जो एक कमीशन बनाने की बात है वह विधान लागू होने के छह महीने के अन्दर बन जाना चाहिये। क्योंकि यह समस्या बहुत गम्भीर है। जब तक सभी समान स्तर पर नहीं आयेंगे देश की उन्नति नहीं हो सकती। उसके बाद मैं कहना चाहता हूं कि प्रान्तीयता की भावना आज बहुत जोर पकड़ रही है और बड़े-बड़े एवं उन्नत प्रान्त छोटे प्रान्तों के हिस्सों को निगल जाना चाहते हैं। इसके सम्बन्ध में मिसाल मैं बिहार की देना चाहता हूं कि वहां के खनिजों का सब मुनाफा बम्बई और कलकत्ता चला जाता है।

***माननीय डॉ. बी.आर. अम्बेडकरः** इस संविधान सभा के पिछले कार्य की ओर ध्यान देने से यह विदित होता है कि जब यह प्रथम बार 9 दिसम्बर 1946 को समवेत हुई थी उस समय से अब तक दो वर्ष ग्यारह महीने और सत्रह दिन हुये हैं। इस समय में संविधान सभा के कुल सत्रह सत्र हुये। इन सत्रह सत्रों में से प्रथम छः सत्र लक्ष्यमूलक संकल्प पारित करने और मूलाधिकार विषयक, संघ संविधान विषयक, संघ की शक्तियों की, प्रान्तीय संविधान विषयक, अल्पसंख्यक-वर्ग विषयक तथा अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों विषयक समितियों के प्रतिवेदनों पर विचार करने में लगे। सातवें, आठवें, नौवें, दसवें और ग्यारहवें सत्रों में संविधान के मसौदे पर विचार हुआ। संविधान सभा के इन ग्यारह सत्रों में 165

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

दिन लगे। इनमें से सभा ने 114 दिन संविधान के मसौदे पर विचार करने में लगाये।

मसौदा समिति का निर्वाचन संविधान सभा ने 29 अगस्त 1947 को किया था। उसकी पहली बैठक 30 अगस्त को हुई। 30 अस्त से उसकी बैठक 141 दिनों तक हुई और इस समय में वह संविधान का मसौदा तैयार करने में लगी रही। मसौदा समिति के लिये कार्य करने के लिये संविधानिक परामर्शदाता द्वारा तैयार किये गये संविधान के मूल मसौदे में 243 अनुच्छेद और 13 अनुसूचियां थीं। मसौदा समिति द्वारा जिस रूप में संविधान का प्रथम मसौदा संविधान सभा में उपस्थित किया गया था उसमें 315 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां थीं। विचार-स्थिति के समाप्त होने पर संविधान के मसौदे में अनुच्छेदों की संख्या बढ़कर 386 हो गई। अपने अन्तिम रूप में संविधान के मसौदे में 395 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियां हैं। संविधान के मसौदे पर भेजे गये कुल संशोधनों की संख्या लगभग 7635 थी। इनमें से सभा में पेश किये गये संशोधनों की संख्या 2473 थी।

इन तथ्यों का मैंने इसलिये वर्णन किया है कि एक स्थिति ऐसी आ गई थी जब यह कहा जाता था कि कार्य समाप्त करने में सभा ने बहुत अधिक समय ले लिया, वह आराम से चल रही है और लोक-धन का अपव्यय कर रही है। 'गांव में आग लग रही है और कहार नाचने में मस्त हैं, की कहावत चरितार्थ हो रही है, कहा जाता था। क्या यह शिकायत किसी रूप में भी न्याययुक्त है? आइये हम उस समय पर विचार करें जो अन्य देशों की संविधान सभाओं ने अपना संविधान बनाने में लगाया। इनके कुछ उदाहरण लीजिये। अमरीका का सम्मेलन 25 मई 1787 को हुआ और 17 सितम्बर 1787 में उसने अपना कार्य समाप्त कर दिया—अर्थात् चार माह में कनाडा का संविधान सम्बन्धी सम्मेलन में 10 अक्तूबर 1864 को हुआ और दो वर्ष पांच माह लगाते हुये मार्च 1867 वह संविधान विधि के रूप में पारित हुआ। आस्ट्रेलिया का संविधान सम्बन्धी सम्मेलन मार्च 1891 में हुआ और नौ साल बाद 9 जुलाई 1900 में संविधान ने विधि का रूप धारण किया। दक्षिणी अफ्रीका का सम्मेलन अक्तूबर 1908 में हुआ और एक वर्ष के बाद 20 सितम्बर 1909 को संविधान ने विधि का रूप लिया। यह सच है कि अमरीका और दक्षिणी अफ्रीका के सम्मेलनों ने जितना समय लिया हमने उससे अधिक समय लिया है। पर कनाडा ने जितना समय लिया उससे अधिक समय हमने नहीं लिया है और आस्ट्रेलिया से तो बहुत ही कम समय लिया है। इस कार्य में व्यतीत किये गये समय के आधार पर तुलना करने में दो बातें याद रखनी चाहिये। एक यह कि अमरीका, कनाडा, दक्षिणी अफ्रीका और आस्ट्रेलिया के संविधान हमारे संविधान से बहुत छोटे हैं। जैसा कि मैं कह चुका हूं हमारे संविधान में 395 अनुच्छेद

हैं और अमरीका निवासियों ने सात अनुच्छेद रखे हैं जिनमें से प्रथम चार को धाराओं में बांटा गया है जिनकी कुल संख्या 21 है, कनाडा के संविधान में 147, आस्ट्रेलिया के संविधान में 128 और दक्षिणी अफ्रीका के संविधान में 159 धारायें हैं। दूसरी बात यह याद रखनी है कि अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अफ्रीका के संविधानों के निर्माताओं को संशोधनों की समस्या का सामना नहीं करना पड़ा। उनको पेश किया हुआ मान लिया गया। इसके विपरीत इस संविधान सभा को 2473 संशोधन पर विचार करना पड़ा। इन तथ्यों पर ध्यान देते हुये देर लगाने का दोषारोपण मुझे निराधार प्रतीत होता है बल्कि इतने महान और जटिल कार्य को इतने अल्प समय में पूरा करने के लिये इस संविधान सभा को चाहिये कि वह अपने आपको बधाई दे।

मसौदा समिति द्वारा दिये गये कार्य की पूर्णतया निन्दा करना श्री नजीरुद्दीन अहमद ने अपना कर्त्तव्य समझ लिया है। उनकी सम्मति में मसौदा समिति द्वारा किया गया कार्य केवल प्रशंसा न करने के योग्य ही नहीं वरन् वह निश्चित रूप से जिस स्तर का होना चाहिये उस स्तर से निम्न श्रेणी का है। मसौदा समिति द्वारा किये गये कार्य के बारे में अपनी राय कायम करने का प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार है और अपनी राय कायम करने के लिये श्री नजीरुद्दीन अहमद का स्वागत है। श्री नजीरुद्दीन अहमद समझते हैं कि मसौदा समिति के किसी भी व्यक्ति की उपेक्षा उनमें बुद्धिबल अधिक है। मसौदा समिति उनके इस दावे पर आपत्ति करना नहीं चाहती है। इसके विपरीत यदि सभा उनको मसौदा समिति में नियुक्त किये जाने के योग्य समझती तो मसौदा समिति उन्हें अपने में पाकर उनका स्वागत करती। यदि संविधान के निर्माण करने में उन्हें कोई स्थान नहीं मिला तो निश्चय ही इसमें मसौदा समिति का कोई दोष नहीं है।

यह स्पष्ट है कि मसौदा समिति के प्रति अपनी घृणा प्रकट करने के लिये श्री नज़ीरुद्दीन अहमद ने उसका नया नाम गढ़ा है। वह विषयान्तर करने वाली समिति है। श्री नजीरुद्दीन अहमद अवश्य ही अपनी इस सूझ से प्रसन्न होंगे। पर वे यह नहीं जानते हैं कि कौशल सहित विषयान्तर करने और कौशल रहित विषयान्तर करने में अन्तर है। यदि मसौदा समिति ने विषयान्तर किया तो वह परिस्थितियों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किये बिना नहीं किया। उसने अकस्मात् मछली पकड़ने के लिये बंसी नहीं फैंकी। वह जिस मछली के पीछे थे उसे प्राप्त करने के लिए उसने परिचित जलाशयों में खोज की। किसी अच्छी वस्तु की खोज में लगना विषयान्तर करने जैसी बात नहीं है। यद्यपि श्री नजीरुद्दीन अहमद का इस बात को मसौदा समिति की प्रशंसा के रूप में कहने का आशय न था पर मैं इसे मसौदा समिति की प्रशंसा के रूप में स्वीकार करता हूं। मसौदा समिति ने जिन संशोधनों को दोषयुक्त समझा उनको वापस करने की और उनके

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

स्थान में जो उसने अच्छे समझे उन्हें रखने की हिम्मत और सच्चाई यदि न दिखाई होती तो उस पर कर्त्तव्य पालन न करने तथा झूठी मान मर्यादा की भावना रखने का भारी दोष लगता। यदि कोई गलती हुई तो मुझे प्रसन्नता है कि मसौदा समिति ने उन गलतियों को मानने में आनाकानी नहीं की और उनको सुधारने में वह अग्रसर हुई।

मुझे यह जानकर खुशी हुई कि सिवा एक सदस्य के मसौदा समिति द्वारा किये गये कार्य के प्रति संविधान सभा के सदस्यों ने सामान्यतया प्रशंसात्मक भाव प्रकट किये हैं। मुझे विश्वास है कि मसौदा समिति इस यथार्थ अभिस्वीकरण को देखकर प्रसन्न होगी जो इतने उदार शब्दों में प्रकट किया गया है। इस सभा के सदस्यों द्वारा तथा मसौदा समिति के मेरे सहयोगियों द्वारा मुझ पर जो बधाइयों की वर्षा की गई है उसके कारण मैं प्रसन्नता से इतना ओत प्रोत हो गया हूं कि उनके प्रति पूर्णतया अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिये मुझे शब्द ही नहीं मिलते। संविधान सभा में अनुसूचित जातियों के स्वार्थों की रक्षा कराने के अतिरिक्त मैं अन्य किसी महानतर आकांक्षा को लेकर नहीं आया था। मुझे स्वप्न में भी यह विचार नहीं हुआ था कि मुझे और भी बड़े-बड़े प्रकार्यों को हाथ में लेने के लिये आमंत्रित किया जायेगा। इस कारण जब सभा ने मुझे मसौदा समिति में निमंत्रित किया तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। और जब मुझे मसौदा समिति का सभापति चुना गया तो मुझे और भी अधिक आश्चर्य हुआ। मसौदा समिति में मुझसे बड़े, मुझसे अच्छे और मुझसे अधिक सक्षम व्यक्ति विद्यमान थे जैसे कि मेरे मित्र श्री अल्लादि कृष्णास्वामी ऐयर। संविधान सभा और मसौदा समिति का मैं कृतज्ञ हूं कि उन्होंने मुझ में इतना विश्वास तथा भरोसा किया तथा मुझे अपना एक साधन बनाया और देश की सेवा करने का मुझे यह अवसर दिया (*हर्ष ध्वनि*)।

जो श्रेय मुझे दिया गया है उसका वास्तव में मैं अधिकारी नहीं हूं। उसके अधिकारी श्री बी.एन. राउ भी हैं जो इस संविधान के संविधानिक परामर्शदाता हैं और जिन्होंने मसौदा समिति के विचारार्थ संविधान का एक मोटे रूप में मसौदा बनाया। कुछ श्रेय मसौदा समिति के सदस्यों को मिलना चाहिये जिन्होंने जैसा कि मैं कह चुका हूं, 141 दिन तक बैठक की और उनके नये सूत्र खोजने के कौशल के बिना तथा विभिन्न दृष्टिकोणों के प्रति सहनशील तथा विचारपूर्ण सामर्थ्य के बिना इस संविधान बनाने का कार्य इतनी सफलतापूर्वक समाप्त न हो पाता। सबसे अधिक श्रेय इस संविधान के मुख्य मसौदा लेखक श्री एस.एन. मुकर्जी को है। बहुत ही जटिल प्रस्थापनाओं को सरल से सरल तथा स्पष्ट से स्पष्ट वैध भाषा में रखने की उनकी योग्यता की बराबरी कठिनाई से की जा सकती है और न कठिन परिश्रम करने की उनकी सामर्थ्य की तुलना की जा सकती है। इस सभा

के लिये वे एक देन स्वरूप थे। यदि उनकी सहायता न मिलती तो इस संविधान को अन्तिम स्वरूप देने में इस सभा को कई और वर्ष लगते। श्री मुकर्जी के अधीन कार्य करने वाले कर्मचारियों को भूल नहीं जाना चाहिये। क्योंकि मैं जानता हूं कि उन्होंने कितना कठिन परिश्रम किया है, और किस प्रकार उन्होंने कभी-कभी आधी रात के बाद तक भी काम किया है। उनके श्रम और सहयोग के लिये मैं उन सबको धन्यवाद देता हूं (*हर्ष ध्वनि*)।

मसौदा समिति का कार्य बहुत ही कठिन हो जाता यदि यह संविधान सभा विभिन्न विचार वाले व्यक्तियों का एक समुदाय मात्र होती, एक उखड़े हुए फर्श के समान होती जिसमें कहीं एक काला पत्थर होता तो कहीं सफेद और जिसमें प्रत्येक व्यक्ति या प्रत्येक समुदाय स्वयं अपने को विधिवेत्ता समझता। सिवा उपद्रव के और कुछ नहीं होता। सभा में कांग्रेस पक्ष की उपस्थिति ने इस उपद्रव की संभावना को पूर्णतया मिटा दिया और इसके कारण कार्यवाहियों में व्यवस्था और अनुशासन दोनों बने रहे। कांग्रेस पक्ष के अनुशासन के कारण ही मसौदा समिति यह निश्चित रूप में जानकर कि प्रत्येक अनुच्छेद और प्रत्येक संशोधन का क्या भाग्य होगा इस संविधान का संचालन कर सकीं। अत: इस सभा में संविधान के मसौदे के शान्त संचालन के लिये कांग्रेस पक्ष ही श्रेय की अधिकारी है।

यदि इस पक्ष के अनुशासन को सब लोग मान लेते तो संविधान सभा की कार्यवाही बड़ी नीरस हो जाती। यदि पक्ष के अनुशासन का कठोरता से पालन किया जाता तो यह सभा 'जी हजूरों' की सभा बन जाती। सौभाग्यवश कुछ द्रोही थे। श्री कामत, डॉ. पी.एस. देशमुख, श्री सिंधवा, प्रो. सक्सेना और पंडित ठाकुरदास भार्गव थे। इनके साथ-साथ मुझे प्रो. के.टी. शाह, और पंडित हृदयनाथ कुंजरू का भी उल्लेख करना चाहिए। जो प्रश्न उन्होंने उठाए वे बड़े सिद्धान्तपूर्ण थे उनके सुझावों को स्वीकार करने के लिए मैं तैयार नहीं था इस बात से उनके सुझावों का मूल्य कम नहीं होता और न उनकी इस सेवा में कोई कमी आती है जो उन्होंने इस सभा की कार्यवाहियों को रोचक बनाने में की है। मैं उनका कृतज्ञ हूं। यदि वे न होते तो मुझे वह अवसर नहीं मिलता जो मुझे इस संविधान में निहित सिद्धान्तों की व्याख्या करने के लिए मिला और जो इस संविधान के पारित करने के यंत्रवत कार्य की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण था।

अन्त में अध्यक्ष महोदय मुझे आपको धन्यवाद देना चाहिये कि आपने बड़ी कुशल रीति से इस सभा की कार्यवाहियों का संचालन किया। जिन लोगों ने इस सभा की कार्यवाहियों में भाग लिया है वे उस उदारता और सहृदयता को नहीं भूल सकते हैं जो आपने इस सभा के सदस्यों के साथ प्रदर्शित की। ऐसे अवसर आये जबकि केवल पारिभाषिक आधार पर मसौदा समिति के संशोधनों को रोकने का प्रयास किया गया। मेरे लिये वे बड़े चिन्तापूर्ण क्षण थे। मैं आपका इस बात के लिये बड़ा कृतज्ञ हूं कि आपने विधिवाद की संविधान निर्माण कार्य पर विजय नहीं होने दी।

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

इस संविधान की जितनी भी प्रति रक्षा की जा सकती थी उतनी प्रतिरक्षा मेरे मित्र श्री अल्लादि कृष्णास्वामी ऐयर और श्री टी.टी. कृष्णमाचारी ने की है। अत: इस संविधान के गुणों के सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं कहूंगा। क्योंकि मैं समझता हूं कि संविधान चाहे जितना भी अच्छा हो यदि उसे कार्यान्वित करने वाले लोग बुरे हैं तो वह निस्संदेह बुरा हो जाता है। संविधान का क्रियाकरण पूर्णतया संविधान के प्रकार पर निर्भर नहीं करता है। संविधान केवल विधानमंडल, कार्यपालिका और न्यायपालिका जैसे अंगों के लिये व्यवस्था कर सकता है। राज्य के इन अंगों का क्रियाकरण जिन पर निर्भर करता है वह जनता और उसके द्वारा स्थापित किये गये राजनैतिक पक्ष है जो उसकी इच्छा और नीति पालन करने के साधन होते हैं। यह कौन कह सकता है कि भारत की जनता और उसके पक्ष किस प्रकार का व्यवहार करेंगे? क्या वे अपने प्रयोजनों को सिद्ध करने में संविधानिक साधनों को काम में लेंगे या वे क्रांतिकारी साधनों को अधिमान देंगे? यदि वे क्रांतिकारी साधन अपनाते हैं तो चाहे संविधान कितना ही अच्छा हो यह कहने के लिये किसी देवदूत की आवश्यकता नहीं है कि वह असफल होगा। अत: इस संविधान पर बिना इस निर्देश के कि जनता और पक्ष किस प्रकार की प्रवृत्ति दिखायेंगे कोई निर्णय देना व्यर्थ है।

इस संविधान की निन्दा अधिकतर दो क्षेत्रों से की जाती है साम्यवादी पक्ष द्वारा और समाजवादी पक्ष द्वारा वे क्यों इस संविधान की निन्दा करते हैं? क्या इस लिये कि यह संविधान वास्तव में खराब है? मैं यह कहने का साहस करता हूं कि 'नहीं हैं।' साम्यवादी पक्ष श्रमिकों की तानाशाही के सिद्धान्त पर आधृत संविधान चाहते हैं वे संविधान की इस कारण निन्दा करते हैं कि यह संसदीय लोकतंत्र पर आधृत है। समाजवादी दो बातें चाहते हैं। पहली बात जो वे चाहते हैं वह यह है कि यदि उनके हाथ में शक्ति आ जायेगी तो बिना प्रतिकर दिये सारी निजी सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण करने या समाजीकरण करने की स्वतन्त्रता संविधान द्वारा उन्हें मिलनी चाहिये। दूसरी बात समाजवादी यह चाहते हैं कि संविधान में वर्णित मूलाधिकार निरपेक्ष तथा बिना किसी परिसीमा के होने चाहिये जिससे कि यदि उनके पक्ष के हाथ में शक्ति आ जाये तो उन्हें आलोचना करने के लिये ही नहीं वरन् राज्य को उलटने तक के लिये भी पूरी पूरी आजादी मिल जाये।

ये ही मुख्य बातें हैं जिनके आधार पर इस संविधान की निन्दा की जाती है। मैं यह नहीं कहता हूं कि संसदीय लोकतन्त्र का सिद्धान्त ही राजनैतिक लोकतन्त्र का आदर्श स्वरूप है। मैं यह नहीं कहता हूं कि बिना प्रतिकर सम्पत्ति अर्जन न करने का सिद्धान्त इतना पवित्र है कि इसकी अवहेलना ही नहीं की जा सकती मैं यह नहीं कहता हूं कि मूलाधिकार कभी निरपेक्ष नहीं हो सकता है और उन पर जो परिसीमा लगाई गई है उनको कभी नहीं उठाया जा सकता है। हां, मैं यह अवश्य कहता हूं कि इस संविधान में जो सिद्धान्त निहित हैं वे इस वर्तमान पीढ़ी के विचार हैं और यदि आप इस कथन में कुछ अतिशयोक्ति समझें तो

मैं यह कहूंगा कि ये संविधान सभा के सदस्यों के विचार हैं। तो फिर इनको संविधान में निहित करने के लिये मसौदा समिति को दोष क्यों? और फिर मैं तो यह कहता हूं संविधान सभा के सदस्यों को भी दोष क्यों? महान अमरीका निवासी राजनीतिज्ञ जेफ़रसन ने, जिसने अमरीका के संविधान निर्माण कार्य में प्रमुख कार्य किया, कुछ बड़े गम्भीर विचार व्यक्त किये हैं जिनकी उपेक्षा संविधान बनाने वाले कभी नहीं कर सकते हैं। एक स्थल पर उन्होंने कहा है:—

"बहुमत की इच्छा से अपने आपको किसी बन्धन में डालने के लिये एक विशिष्ट राष्ट्र के रूप में हम प्रत्येक पीढ़ी को, मान सकते हैं पर वर्तमान पीढ़ी किसी भी अनुवर्त्ती पीढ़ी को, किसी अन्य देश के निवासियों से अधिक, बन्धन में नहीं बांध सकती है।"

एक और अन्य स्थल पर उन्होंने कहा है:

"राष्ट्र के उपयोग के लिये स्थापित संस्थाओं को उनके उद्देश्यों के अनुरूप बनाने तक के लिये भी न छुआ जा सकता है और न उनमें रूप भेद किया जा सकता है क्योंकि जनता के लिये न्यास के रूप में उनके प्रबन्ध करने के लिये जो व्यक्ति नियुक्त किये जाते हैं उनमें अधिकार निष्कारण मान लिये जाते हैं; यह विचार सम्भव है कि एक शासक के दुरुपयोग से बचने के लिये कल्याणकारी हों, पर स्वयं राष्ट्र के लिये ये बड़े मूर्खतापूर्ण हैं। फिर भी हमारे वकील और पुजारी इसी सिद्धान्त का प्रचार करते हैं, और मान लीजिये कि पूर्ववर्त्ती पीढ़ी का आधार हमसे अधिक सुदृढ़ था, उसे हम पर विधियों के आरोपण करने का अधिकार था जो हमारे लिये अपरिवर्त्तनीय है और उसी प्रकार से हम भावी पीढ़ियों के लिये विधि बना सकें और उनपर भार डाल सकें जिनमें परिवर्तन करने का उन्हें अधिकार न हो तो ठीक है यह संसार मृतकों का है और जीवन जीवन नहीं है।"

मैं निवेदन करता हूं कि जेफरसन ने जो कुछ कहा है वह केवल सत्य ही नहीं वरन् परम सत्य है। इस पर कोई आपत्ति हो ही नहीं सकती। जेफरसन द्वारा निर्धारित इस सिद्धान्त का यदि संविधान सभा पालन न करती तो वह अवश्य ही दोष ही का नहीं वरन् निन्दा तक का पात्र होती। पर मैं पूछता हूं कि क्या वह दोष का पात्र है? बिलकुल नहीं। इसके लिये केवल संविधान के संशोधन सम्बन्धी उपबन्धों का ही परिक्षण करना है। जनता को संविधान में संशोधन करने का अधिकार न देकर, जैसा कि कनाडा में है, या संविधान के संशोधन को असाधारण निबन्धों और शर्त्तो की पूर्त्ति के अधीन रखकर, जैसाकि अमरीका और आस्ट्रेलिया में है, सभा ने इस संविधान पर अपनी अन्तिम अच्युतता की मुहर लगाने का काम करने से अपने आपको रोका ही नहीं वरन् इस संविधान के संशोधन करने की एक बड़ी ही सुविधाजनक प्रक्रिया उपबन्धित की है। इस संविधान के किसी भी आलोचक को मैं यह चुनौती देता हूं कि वह यह सिद्ध करे कि संसार में कहीं भी किसी संविधान सभा ने, उन परिस्थितियों में जिनमें यह देश फंसा हुआ है,

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

संविधान के संशोधन के लिये इतनी सुविधाजनक प्रक्रिया उपबन्धित की हो। जो लोग इस संविधान से असन्तुष्ट हैं उन्हें केवल दो तिहाई बहुमत प्राप्त करना है और यदि वे वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचित संसद् में दो-तिहाई बहुमत भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं तो यह नहीं समझा जा सकता है। कि जन साधारण उनके असंतोष में उनका साथ दे रहा है।

संविधानिक अर्थ की केवल एक ही बात है जिसका मैं निर्देश करना चाहता हूं। इस बात की बड़ी शिकायत की गई है कि केन्द्रीयकरण बहुत अधिक है और राज्यों की स्थिति नगरपालिकाओं जैसी कर दी गई है। यह स्पष्ट है कि यह विचार केवल अतिशयोक्ति ही नहीं है बल्कि यह इस बात के प्रति मिथ्याधारणा पर भी आधृत हैं कि संविधान यथार्थ रूप में किन किन बातों के लिये प्रयास करता है। केन्द्र और राज्यों में परस्पर सम्बन्ध के विषय में उस मूलाधिकार का ध्यान में रखना आवश्यक है जिसपर यह सम्बन्ध निर्भर करता है। फेडरल शासन पद्धति का यह मूलभूत सिद्धान्त है कि विधायी और कार्यपालिका प्राधिकार का विभाजन केन्द्र और राज्यों में केन्द्र द्वारा निर्मित किसी विधि द्वारा नहीं होता वरन् स्वयं संविधान द्वारा किया जाता है। यही यह संविधान करता है। हमारे संविधान के अधीन राज्य अपने विधायी और कार्यपालिका अधिकार के लिये किसी प्रकार से भी केन्द्र पर आश्रित नहीं हैं। इस विषय में केन्द्र और राज्यों की स्थिति समान है। यह अनुभव करना कठिन है कि ऐसे संविधान को केन्द्रवादी किस प्रकार कहा जा सकता है। यह हो सकता है कि विधायी तथा कार्यपालिका प्राधिकार के प्रवर्तन के लिये केन्द्र को जितना क्षेत्र किसी अन्य फेडरल संविधान में दिया गया है उससे अधिक क्षेत्र का संविधान में दिया गया हो। यह हो सकता है कि अवाशिष्ट शक्तियां केन्द्र को दे दी गई हों और राज्यों को न दी गई हों। पर फेडरल शासन पद्धति की मुख्य बातें ये नहीं हैं। जैसा कि मैं कह चुका हूं फेडरल शासन पद्धति की मुख्य बात यह है कि संविधान द्वारा केन्द्र और एककों में विधायी तथा कार्यपालिका प्राधिकार का विभाजन हो। यह सिद्धान्त हमारे संविधान में निहित है। इसमें कोई भ्रम हो ही नहीं सकता। अत: यह कहना गलत है कि राज्य केन्द्र के अधीन रख दिये गये हैं। केन्द्र अपनी स्वेच्छा से उस विभाजन में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता है। न न्यायपालिका कर सकती है। यह ठीक ही कहा गया है:

"न्यायालय रूप भेद कर सकते हैं पर वे एक के स्थान में दूसरी बात नहीं रह सकते हैं। नये तर्कों के रूप में वे पहले निर्वचनों का पुनरीक्षण कर सकते हैं, नये दृष्टिकोण उपस्थित किये जाते हैं, सीमा तक दशाओं में वे विभाजन-पंक्ति को इधर-उधर कर सकते हैं, पर कुछ ऐसे अवरोध हैं जिनको वे पार नहीं कर सकते, निश्चित रूप से सौंपी हुई शक्तियों का वे पुनर्वटन नहीं कर सकते। वर्तमान शक्तियों की वे एक व्यापक रूप योजना दे सकते

हैं, पर किसी प्राधिकार को स्पष्ट रूप में दी गई शक्ति को वे किसी अन्य प्राधिकार को नहीं सौंप सकते हैं।"

अत: केन्द्रीयकरण के सम्बन्ध में लगाया गया प्रथम अभियोग जो फेडरेशन को निर्मूल करता है सिद्ध नहीं होगा।

दूसरा अभियोग यह है कि केन्द्र को राज्यों पर अतिक्रमण करने का अधिकार दिया गया है। इस अभियोग को स्वीकार कर लेना चाहिये। पर इन अतिक्रमणकारी शक्तियों के होने के कारण इस संविधान की निन्दा करने से पूर्व कुछ बातों पर ध्यान देना चाहिये। पहली बात यह है कि ये अतिक्रमणकारी शक्तियां इस संविधान का शान्तिकालीन रूप नहीं है। उनका प्रयोग और प्रवर्तन स्पष्ट रूप से केवल आपात के लिये ही सीमित है। दूसरी बात यह है: क्या हम आपात हो जाने पर केन्द्र को अतिक्रमणकारी शक्ति देने का वर्जन कर सकते थे? जो लोग आपात में भी केन्द्र को इन आक्रमणकारी शक्तियों के देने के औचित्य को स्वीकार नहीं करते हैं वे, ऐसा प्रतीत होता है कि, इस विषय के मूल में जो समस्या है उसका स्पष्ट ज्ञान नहीं रखते हैं। "दी राउन्ड टेबुल" प्रसिद्ध पत्रिका के दिसम्बर 1935 के अंक में एक लेखक ने इस समस्या को स्पष्ट रूप में दिया है और उसके निम्नलिखित उद्धरण को उद्धृत करने के लिये मुझे क्षमायाचना की आवश्यकता नहीं है। लेखक कहता है:

"राजनैतिक पद्धतियां, अन्तत: इस प्रश्न पर निर्भर करती हुई कि किस के प्रति या किस प्राधिकारी में नागरिक निष्ठा रखे, अधिकार और कर्तव्य की एक गुत्थी है। शान्तिकाल में यह प्रश्न उपस्थित नहीं होता क्योंकि विधि सरलतापूर्वक क्रियान्वित होती रहती है और व्यक्ति कुछ विषयों में एक प्राधिकारी की और कुछ में किसी अन्य प्राधिकारी की आज्ञा पालन करता हुआ अपना कार्य करता चला जाता है। पर संकटकाल में हो सकता है कि प्राधिकार विषयक दावों में संघर्ष हो जाये और उस समय यह स्पष्ट हो जाता है कि वस्तुत: निष्ठा का विभाजन नहीं हो सकता है। निष्ठा का यह वाद हेतु इस अन्तिम रूप में किसी न्याय-मण्डल के विधि-निर्वचन द्वारा निश्चित नहीं किया जा सकता है। विधि को तथ्य के अनूरूप होना चाहिये और यही विधि का दोष है। जब इन सब बातों को दूर कर दिया जाता है तो केवल यह प्रश्न रह जाता है कि कौन प्राधिकारी नागरिक की अवशिष्ठ निष्ठा का अधिकारी है। केन्द्र अधिकारी है या संघटक राज्य?"

इस समस्या का हल इसी प्रश्न के उत्तर पर निर्भर करता है जो इस समस्या पर सारभूत प्रश्न है। इसमें सन्देह नहीं हो सकता है कि जनता के एक विशाल भाग की सम्मति के अनुसार आपातकाल में नागरिक की अवशिष्ठ राज्य भक्ति केन्द्र के प्रति होनी चाहिये न कि संघटक राज्य के प्रति। क्योंकि केन्द्र ही सार्वजनिक लक्ष्य के लिये तथा समूचे देश के सामान्य हित के लिये प्रयत्नशील

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

हो सकता है। आपातकाल में प्रयोग करने के लिये केन्द्र को कुछ अतिक्रमणकरी शक्तियां देने के पक्ष में यह प्रमाण है। और फिर इन आपात शक्तियों द्वारा संघटक राज्यों पर क्या आभार डाले जाते हैं? इससे अधिक और कुछ नहीं कि आपात में अपने स्थानीय हितों के साथ साथ समूचे राष्ट्र की सम्मति और हितों का भी विचार किया जाये। केवल वे ही लोग इसके प्रति शिकायत कर सकते हैं जिन्होंने इस समस्या को समझा नहीं है।

यहां मैं अपना भाषण समाप्त कर देता। पर मेरा मस्तिष्क अपने देश के भविष्य विषयक विचारों से इतना परिपूर्ण है कि मैं यह अनुभव करता हूं कि इस अवसर पर इस विषय पर मैं अपने विचारों को व्यक्त करूं। 26 जनवरी 1950 को भारत एक स्वतन्त्र देश होगा (*हर्षध्वनि*) उसकी स्वाधीनता का क्या परिणाम होगा? क्या वह अपनी स्वाधीनता की रक्षा कर सकेगा या उसको फिर खो देगा? मेरे मन में सर्वप्रथम यह विचार आता है। यह बात नहीं कि भारत कभी स्वाधीन न रहा हो। बात यह है कि एक बार वह पाई हुई स्वाधीनता को खो चुका है। क्या वह दुबारा भी उसे खो देगा? यही वह विचार है जिसके विषय में भविष्य के प्रति मैं बहुत चिन्तित हूं। जो तथ्य मुझे बहुत परेशान करता है वह यह है कि भारत ने पहले एक बार अपनी स्वाधीनता खोई ही नहीं वरन् अपने ही कुछ लोगों की कृतघ्नता तथा फूट के कारण वह स्वाधीनता आई गई हुई। मुहम्मद बिन कासिम द्वारा सिन्ध पर आक्रमण करते समय दाहर राजा के सेनापति ने मुहम्मद बिन कासिम के अभिकर्त्ताओं से घूंस ले ली और अपने राजा की ओर से युद्ध करने से मना कर दिया। वह जयचन्द था जिसने मुहम्मद गोरी को भारत पर आक्रमण करने और पृथ्वीराज से युद्ध करने के लिये निमन्त्रण दिया और अपनी तथा सोलंकी राजाओं की सहायता का बचन दिया। जब शिवाजी हिन्दुओं की मुक्ति के लिये युद्ध कर रहा था उस समय अन्य मरहठा सरदार और राजपूत राजा मुगल बादशाओं की ओर से युद्ध कर रहे थे। जब अंग्रेज सिख शासकों को मिटाने में लगे हुए थे, सिखों का मुख्य सेनापति गुलाब सिंह चुपचाप बैठा रहा और सिख राजय को बचाने में सहायता न की। 1857 में जब भारत के एक विशाल भाग ने अंग्रेज़ों के विरुद्ध स्वाधीनता के संग्राम की घोषणा की तो मूक दर्शकों की भांति सिख खड़े खड़े तमाशा देखते रहे।

क्या इसी इतिहास की पुनरावृत्ति होगी? इस विचार से मैं चिन्तित हूं। इस तथ्य के कारण, कि जाति और मत मतान्तर के रूप में हमारे प्राचीन दुश्मनों के साथ साथ हम विरोधी राजनैतिक मत मतान्तर के आधार पर कई राजनैतिक पक्ष बनाते चले जा रहे हैं, यह चिन्ता और भी अधिक उग्ररूप धारण कर लेती है। क्या भारतीय मत मतान्तरों को देश से श्रेष्ठ मानेंगे या देश को मत मतान्तरों से श्रेष्ठ मानेंगे? मैं इस बात को नहीं मानता हूं। पर यह सत्य है कि यदि ये पक्ष मत

मतान्तरों को देश से श्रेष्ठ मानते हैं तो हमारी स्वाधीनता फिर संकट में पड़ जायेगी और संभवतः सदैव के लिए हाथ से जाती रहेगी। इस संकट से हम सबको दृढ़ होकर रक्षा करनी चाहिये। अपने खून की अन्तिम बूंदों से अपनी स्वाधीनता की रक्षा करने के लिए हमें दृढ़ प्रतिज्ञ होना चाहिये। (*हर्ष ध्वनि*)।

26 जनवरी 1950 को भारत एक लोकतंत्रात्मक देश होगा। इसका यह अर्थ है कि उस दिन से भारत में जनता के लिये जनता द्वारा जनता की सरकार होगी। वही विचार फिर मेरे मष्तिष्क में आता है। उसके इस लोकतन्त्रात्मक संविधान का क्या होगा? क्या वह इसकी रक्षा कर सकेगा या इसको फिर खो देगा। यह दूसरा विचार है जो मेरे मन में उत्पन्न होता है और मुझे पहले विचार की भाँति व्यथित करता है।

यह बात नहीं कि भारत लोकतन्त्र को जानता ही न था। एक समय था जब भारत गणराज्यों से सुसज्जित था और जहां राजा थे वहां भी या तो वे निर्वाचित होते थे या उनके अधिकार सीमित रहते थे। उनको परमाधिकार प्राप्त न थे। यह बात नहीं है कि भारत संसद या संसदीय प्रक्रिया से परिचित न था। बौद्ध भिक्षु-संघ के अध्ययन से विदित होता है कि केवल संसद ही नहीं थी—संघ संसद के अतिरिक्त और कुछ नहीं होते थे—वरन् आधुनिक युग में संसदीय प्रक्रिया के जितने भी नियम हैं उन सबसे ये संघ परिचित थे। उनके यहां बैठने के प्रबन्ध सम्बन्धी नियम, प्रस्तावों, संकल्पों, गणपूर्ति, उन्मोधक, मतगणना, शलाका द्वारा मतदान, अविश्वास-प्रस्ताव, व्यवस्था, पहले निर्णय हुए अभियोग इत्यादि सम्बन्धी नियम थे। यद्यपि बुद्ध इन नियमों को संघ की बैठकों में लागू करते थे, पर उन्होंने इन नियमों को देश की तत्कालीन राजनैतिक सभाओं में प्रचलित नियमों में से लिया होगा।

भारत से यह लोकतंत्रात्मक व्यवस्था मिट गई। क्या वह फिर इस व्यवस्था को मिटा देगा? मैं नहीं जानता। पर भारत जैसे देश में, जहां लोकतंत्र के एक दीर्घ काल से अप्रयुक्त रहने से यह एक नई सी वस्तु समझी जाती है, संभवतया लोकतन्त्र के स्थान में तानाशाही के होने का संकट वर्तमान है। यह बहुत कुछ संभव है कि यह नवजात लोकतंत्र अपना स्वरूप बनाये रखे पर वास्तव में अपने स्थान में तानाशाही की स्थापना कर दे। यदि कोई दुर्घटना होती है तो दूसरी संभावना के साकार होने की अधिक आशा है।

यदि हम लोकतंत्र को केवल रूप में ही नहीं वरन् यथार्थ में बनाये रखना चाहते हैं तो हमें क्या करना चाहिये? मेरे विचारानुसार सबसे पहले हमें यह करना चाहिये कि अपने सामाजिक और आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये हम संविधानिक रीतियों को दृढ़ता पूर्वक अपनायें। इसका अर्थ यह है कि क्रान्ति की निर्मम रीतियों का हम परित्याग करें इसका अर्थ यह है कि सविनय अवज्ञा, असहयोग और सत्याग्रह की रीति का हम परित्याग करें। आर्थिक तथा सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये जब कोई मार्ग न रहे तब तो इन असंविधानिक रीतियों का अपनाना

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

बहुत कुछ रूप में न्यायपूर्ण हो सकता है। पर जब संविधानिक रीतियों का मार्ग खुला हुआ है कि इन असंविधानिक रीतियों का अपनाना कभी न्यायसंगत नहीं हो सकता है। ये रीतियां अराजकता के सूत्रपात के अतिरिक्त और कुछ नहीं है और जितना शीघ्र इनका परित्याग किया जाये उतना ही हमारे लिये अच्छा है।

दूसरी बात जो हमें करनी है वह यह है कि हम उस सावधानी को बरतें को जोन स्टूआर्ट मिल ने उन सबको बरतने के लिये कहा है जो लोकतन्त्र को बनाये रखने में रुचि रखते हैं, वह यह है कि "किसी भी महान व्यक्ति के चरणों में अपने स्वातन्त्र्य को चढ़ा न दें या उसे वे शक्तियां न सौंपे जो उसे उन्हीं की संस्थाओं को मिटाने की शक्ति दे।" महान व्यक्तियों के प्रति, जिन्होंने जीवन पर्यन्त देश की सेवा की हो, कृतज्ञ होने में कोई बुराई नहीं है। पर कृतज्ञता की भी सीमा है। आयरलैंड के देशभक्त डोनियल ओं कोनैल ने उस विषय में यह ठीक ही कहा है अपने सम्मान को खोकर कोई पुरुष कृतज्ञ नहीं हो सकता, अपने सतित्व को खोकर कोई स्त्री कृतज्ञ नहीं हो सकती, और अपने स्वातन्त्र्य को खो कर कोई राष्ट्र कृतज्ञ नहीं हो सकता। किसी अन्य देश की अपेक्षा भारत के लिये यह चेतावनी अधिक आवश्यक है। क्योंकि भारत में भक्ति या जिसे भक्ति मार्ग या वीर पूजा कहा जाता है उसका भारत की राजनीति में इतना महत्वपूर्ण स्थान है जितना किसी अन्य देश की राजनीति में नहीं है। धर्म में भक्ति आत्म-मोक्ष का मार्ग हो सकता है। पर राजनीति में भक्ति या वीर पूजा पतन तथा अन्ततः तानाशाही का एक निश्चित मार्ग है।

तीसरा काम जो हमें करना है वह यह है कि केवल राजनैतिक लोकतन्त्र से ही हमें सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिये। अपने राजनैतिक लोकतन्त्र को हमें सामाजिक लोकतंत्र का रूप भी देना चाहिये। सामाजिक लोकतंत्र का क्या अर्थ है? इसका अर्थ जीवन के उस मार्ग से है जो स्वातंत्र्य, समता और बन्धुत्व को जीवन के सिद्धान्तों के रूप में अभिज्ञात करता है। स्वातन्त्र्य, समता और बन्धुत्व के इन सिद्धान्तों को इन तीनों के एक संयुक्त रूप से पृथक पृथक मदों के रूप में नहीं समझनी चाहिये। इन तीनों को मिलकर एक इस प्रकार का संयुक्त रूप बनता है कि एक का दूसरे से विच्छेद करना लोकतंत्र के मूल प्रयोजन को ही विफल करना है। स्वातन्त्र्य को समता से पृथक नहीं किया जा सकता, समता को स्वातन्त्र्य से पृथक नहीं किया जा सकता। और न स्वातन्त्र्य या समता को ही बन्धुत्व से पृथक किया जा सकता है। समता विहीन स्वातन्त्र्य से कुछ व्यक्तियों की अनेक व्यक्तियों पर प्रभुता का प्रादुर्भाव होगा। स्वातन्त्र्य विहीन समता व्यक्तिगत उपक्रम का ह्रास करेगा। बन्धुत्व के बिना स्वातन्त्र्य और समता अपना स्वाभाविक मार्ग ग्रहण नहीं कर सकते। उनको प्रवत्त करने के लिये सिपाही की आवश्यकता है। यह तथ्य स्वीकार करते हुये हमें कार्यारम्भ करना चाहिये कि भारतीय समाज में दो बातों का पूर्णतया अभाव है। इनमें से एक समता है। सामाजिक स्तर पर हमारे

भारत में हमारा एक ऐसा समाज है जो क्रमानुसार निश्चित असमता के सिद्धान्त पर आश्रित है जिसका अर्थ कुछ व्यक्तियों की उन्नति और कुछ का पतन है। आर्थिक स्तर पर हमारा एक ऐसा समाज है जिसमें कुछ लोग ऐसे हैं जिनके पास अतुल सम्पत्ति है और कुछ ऐसे हैं जो निरी निर्धनता में जीवन बिता रहे हैं। 26 जनवरी 1950 को हम विरोधी भावनाओं से परिपूर्ण जीवन में प्रवेश कर रहे हैं। राजनैतिक जीवन में हम समता का व्यवहार करेंगे और सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में असमता का। राजनीति में हम एक व्यक्ति के लिये एक मत और एक मत का एक ही मूल्य के सिद्धान्त को मानेंगे। अपने सामाजिक और आर्थिक जीवन में अपनी सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था के कारण एक व्यक्ति का एक ही मूल्य के सिद्धान्त का हम खंडन करते रहेंगे। इन विरोधी भावनाओं से परिपूर्ण जीवन को हम कब तक बिताते चले जायेंगे? यदि हम इसका बहुत काल तक खंडन करते रहेंगे तो हम अपनी राजनैतिक लोकतन्त्र को सकट में डाल देंगे। हमें इस विरोध को यथासंभव शीघ्र ही मिटा देना चाहिये अन्यथा जो असमता से पीड़ित हैं वे लोग इस राजनैतिक लोकतन्त्र की उस रचना का विध्वंस कर देंगे जिसका निर्माण इस सभा ने इतने परिश्रम के साथ किया है।

एक दूसरी वस्तु जिसका हमारे यहां अभाव है वह बन्धुत्व के सिद्धान्त का अभिस्वीकरण है। बन्धुत्व से क्या अभिप्राय है? बन्धुत्व से अभिप्राय समस्त भारतवासियों के भाईचारे की भावना से है—यदि भारतवासी सब एक हैं तो। यह वह सिद्धान्त है जो सामाजिक जीवन को एकता तथा दृढ़ता प्रदान करता है। इसका प्राप्त करना कठिन है। यह कितना कठिन है इसका अनुमान जेम्स ब्राइस की उस कहानी से लगाया जा सकता है जिसका जिक्र उन्होंने संयुक्त राज्य अमेरिका के बारे में अमरीका कामनवेल्थ विषय पर अपनी एक कृति में किया है वह कहानी यह है—मैं स्वयं ब्राइस के शब्दों में इसे कहना चाहता हूं:—

"कुछ वर्ष पूर्व अमरीका का प्रोटेस्टेन्ट एपिस्कोपल गिरजाघर अपने द्विवार्षिक सम्मेलन में अपनी पूजा की पद्धति के पुनरीक्षण में संलग्न था। यह वांछनीय समझा गया कि छोटे-छोटे वाक्यों की प्रार्थनाओं में एक प्रार्थना समस्त जनता के लिये भी पुर:स्थापित की जाये और एक प्रसिद्ध नये इंग्लैंड के पुजारी ने ये शब्द प्रस्थापित किये 'हे ईश्वर' हमारे राष्ट्र को आशीर्वाद दे। दोपहर बाद तत्क्षण स्वीकार करने के पश्चात इस वाक्य को दूसरे दिन पुनर्विचार के लिये प्रस्तुत किया गया और उस समय जन साधारण ने इस शब्द 'राष्ट्र' पर राष्ट्रीय एकता के बहुत ही अधिक निश्चित अभिस्वीकरण के रूप में अर्थ लगाते हुये इतनी आपत्तियाँ उठाई कि उस शब्द को छोड़ना पड़ा और ये शब्द रखने पड़े 'ऐ ईश्वर इन संयुक्त राज्यों को आशीर्वाद दीजिये।"

संयुक्त राज्य अमरीका में उस समय जब यह घटना हुई थी। इतना कम ऐक्यभाव था कि अमरीका के लोग यह नहीं समझते थे कि उनका एक राष्ट्र है। यदि

[डॉ. बी.आर. अम्बेडकर]

संयुक्त राज्य अमरीका के लोग यह नहीं सोच सकते थे कि उनका एक राष्ट्र है तो भारतवासियों के लिये यह सोचना कितना कठिन है कि उनका एक राष्ट्र है। मुझे वे दिन याद हैं जब कि राजनीति में दखल रखने वाले भारतवासी "भारत की जनता" शब्दों पर आक्रोश प्रकट करते थे। वे "भारतीय राष्ट्र" शब्दों को अधिक चाहते थे। मेरी यह सम्मति है कि इस बात में विश्वास करके कि हमारा एक राष्ट्र है हम एक बड़े मायाजाल में अपने आपको डाल रहे हैं। हजारों जातियों में बंटी हुई जनता किस प्रकार एक राष्ट्र हो सकती है? जितना शीघ्र हम यह अनुभव कर लें कि अभी हम राष्ट्र शब्द के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक अर्थ में राष्ट्र नहीं है उतना ही हमारे लिये लाभदायक होगा। क्योंकि यह अनुभव कर लेने पर ही हम एक राष्ट्र बनाने की आवश्यकता का अनुभव करेंगे और इस लक्ष्य को प्राप्त करने के मार्ग और साधनों के बारे में गंभीर विचार करेंगे। इस लक्ष्य की प्राप्ति बहुत कठिन है—संयुक्त राज्य अमरीका में जितना कठिन थी उससे कहीं अधिक कठिन है। संयुक्त राज्य अमरीका में जाति-समस्या न थी। भारत में जातियां हैं। ये जातियां राष्ट्रीयता की विरोधिनी है। सर्व प्रथम इस कारण कि ये सामाजिक जीवन में पार्थक्य प्रस्तुत करती हैं। ये इस कारण भी राष्ट्रीयता की विरोधिनी हैं कि परस्पर जातियों में ईर्ष्या और द्वेष उत्पन्न करती हैं। परन्तु यदि हम वास्तव में एक राष्ट्र के रूप में होना चाहते हैं तो हमें इन सब कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करना है। क्यों बन्धुत्व तभी सत्य हो सकता है जब कि एक राष्ट्र हो। बन्धुत्व के बिना समता और स्वातन्त्र्य की जड़ उतनी ही गहरी हो सकेगी जितनी रंग की सतह की जड़ होती है।

जो कार्य हमारे सामने हैं उसके बारे में मेरे ये विचार हैं। कुछ लोगों को अच्छे न लगें। पर इस बात का विरोध नहीं किया जा सकता। कि इस देश में राजनैतिक शक्ति एक दीर्घ काल से चन्द लोगों के अधिकार में ही रही है और अधिकांश लोग केवल भारवाही पशु ही नहीं वरन् बलि-पशु तक रहे हैं और हैं। इस एकाधिकार ने उन्हें केवल अपनी दशा सुधारने के अवसर से ही वंचित नहीं रखा वरन् इसने उनमें से उस तत्व तक को निचोड़ लिया जिसको जीवन का महत्व कहा जा सकता है। ये पद्दलित वर्ग शासित होने से परेशान हैं। वे स्वयं अपने पर शासन करने के लिये बेचैन हैं। पद्दलित वर्गों में इस स्वानुभूति की प्रेरणा को वर्ग-संघर्ष या वर्ग-युद्ध का रूप ग्रहण नहीं करने देना चाहिये। इससे सभा में विभाजन हो जायेगा। वह दिवस वास्तव में प्रलय दिवस होगा। क्योंकि जैसा अब्राहम लिन्कन ने ठीक ही कहा है कि जिस सभा में ही स्वयं मतभेद हो वह अधिक काल तक नहीं टिक सकती। अत: उनकी आकांक्षाओं की जितनी शीघ्र पूर्ति की जायेगी उतनी ही अधिक चन्द व्यक्तियों की, देश की, उसकी स्वाधीनता को बनाये रखने में तथा उसकी लोकतंत्रात्मक रूप रेखा को बनाये रखने

में भलाई है। यह तभी हो सकता है जब कि समता और बन्धुत्व की स्थापना जीवन के सब अंगों में हो। इसी कारण मैंने इन पर इतना जोर दिया है।

सभी को मैं और अधिक कष्ट देना नहीं चाहता हूं। इसमें सन्देह नहीं कि स्वाधीनता हर्ष का विषय है। पर हम यह न भूल जायें कि स्वाधीनता ने हमारे ऊपर महान उत्तरदायित्व डाल दिये हैं। स्वाधीनता के कारण अब हमारे पास किसी त्रुटि के लिये अंग्रेजों पर दोष डालने का बहाना नहीं रहा। यदि एतत्पश्चात् कोई त्रुटि होती है तो सिवा अपने स्वयं के हम किसी अन्य को दोष नहीं दे सकते हैं। त्रुटियां होने का बड़ा भारी भय है। काल बड़ी तीव्र गति से बदलता चला जा रहा है। जनता जिसमें हमारे देश की जनता भी शामिल है नई विचार धाराओं से प्रभावित हो रही है। जनता द्वारा शासन से वह परेशान होती चली जा रही है। वह जनता के लिये सरकार बनाने के लिये तैयार है और इस बात के प्रति उदासीन है चाहे वह जनता को जनता द्वारा सरकार हो या न हो। यदि हम इस संविधान का रक्षण करना चाहते हैं जिसमें हमने जनता के लिये जनता द्वारा जनता की सरकार के सिद्धान्त की प्रतिष्ठा करने का प्रयास किया है तो हम इस बात का संकल्प करें कि जो बुराइयां हमारे मार्ग में हैं और जिनके कारण जनता के लिये सरकार को जनता द्वारा सरकार से अधिक पसन्द करती है उन बुराइयों को समझने में बिलम्ब न करें और उन बुराइयों को दूर करने के उपक्रम में दौर्बल्य न दिखायें। देश की सेवा करने का यही मार्ग है। इससे अच्छे मार्ग से मैं परिचित नहीं हूं।

***अध्यक्ष:** सभा कल प्रात: दस बजे तक के लिये स्थगित होगी और उस समय हम डॉ. अम्बेडकर द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव पर मत लेंगे।

इसके पश्चात् सभा शनिवार 26 नवम्बर 1949 ई. के प्रात: दस बजे तक के लिये स्थगित हुई।

GIPD–HS-247A PSD–9-1-53–320.